

भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का विकास

Sachin Kumar Yadav

Research Scholar, B.R.A.B.U. Muzaffarpur Bihar

Dr. Abhay Kumar

Professor & principal RLSY College Bettiha

भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा इतिहास के प्रारम्भ से ही दिखाई देती है। वस्तुतः इसे भारतीय आत्मा को संदर्भित करने वाला प्रत्यय माना जा सकता है। प्राचीन कालीन साहित्य में इस प्रकार के झलक अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है। भारत की एक-एक निश्चित सीमाओं का उल्लेख करते हुए उसकी सन्तति को भारती कहना तथा विभिन्न प्रकार की भिन्नताओं के मध्य एक सामान अनुप्राणित करने वाली भावनाओं के रूप में इसको देखा जा सकता है। वर्तमान काल में इस अवधारणा के राजनीतिक सामाजिक एवं धार्मिक पहलुओं पर अधिक जोर दिया जाने लगा, जिसके कारण एक विशेष बौद्धिक वर्ग के द्वारा इसे हिन्दू सांस्कृति से जोड़ कर देखा जाने लगा है। वास्तविकता यह है कि सांस्कृति राष्ट्रवाद को राष्ट्रवाद के प्रकार के रूप में देखे जाने की आवश्यकता है, जिसका किसी धर्म अथवा सम्प्रदाय से कोई संबंध नहीं रहा है। यह मानवता के उच्चतम शिखर के उद्देश के रूप में देखा जाना चाहिए। इस अवधारणा में धर्म, सम्प्रदाय, भाषा, जाति, प्रदेश इत्यादि के रूप में किसी प्रकार के विभाजन का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। सांस्कृति राष्ट्रवाद आम तौर पर उन विचारों और प्रथाओं को संदर्भित करता है, जो कथित राष्ट्रीय समुदाय की संस्कृति के पुनरुत्थान से संबंधित है। जैसे :- सांस्कृति राष्ट्रवाद की पहचान, इतिहास और नियति की एक दृष्टि प्रदान करने के लिए निर्धारित करता है। सांस्कृति राष्ट्रवाद के प्रमुख एजेन्ट बुद्धिजीवी और कलाकार हैं, जो राष्ट्र के बारे में अपने दृष्टिकोण को व्यापक समुदाय तक पहुँचाना चाहते हैं, जिसे राष्ट्रीय स्वयं सेवक भारतीय संस्कृति पर आधारित इस प्रकार के राष्ट्रवाद को अपने उद्भव काल से ही प्रश्रय देती रही है तथा इसे राष्ट्रीय उत्थान के महत्वपूर्ण कारक के रूप में स्वीकार करती है।

समकालीन विश्व में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एक महत्वपूर्ण तथा प्रभावी अवधारणा के रूप में विकसित हुआ है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी संस्कृति के मूल तत्वों को अपने राष्ट्र की प्रगति के लिए एक अनिवार्य तत्व के रूप में देखता है। यह मानवता के विकास का प्रमुख पोषक तत्व है। राष्ट्र व्यक्ति एवं मानव जाति के मध्य यह एक अनिवार्य शर्त के रूप में स्वीकार किया जाता है। राष्ट्रवाद की भावना का निर्माण स्वतंत्रता, सहिष्णुता, समानता एवं व्यक्तिगत अधिकारों के उदार मूल्यों के संगत में होना चाहिए। पाश्चात्य विचारक जॉन स्टुअर्ट मिल राष्ट्रीय पहचान को सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य मानते हैं। उनका मानना है कि एक अर्थपूर्ण एवं स्वायत्त जीवन के लिए तथा उदार एवं लोकतांत्रिक राजनीति के लिए राष्ट्रीय अस्मिता का बना रहना बहुत ही आवश्यक है। महर्षि अरविन्द— के अनुसार भारत में भारतीय राष्ट्रवाद का विकास होना चाहिए, जिसकी आत्मा हिन्दू के करीब हो। किरणचंद बंदोपध्याय ने 1873 ई० में अपने नाटक भारतमाता में भारत को माता के रूप में चित्रित किया था। विश्व किसी राष्ट्र ने अपने राष्ट्र को माता का स्वरूप नहीं दिया। हमारी पुरातन संस्कृति

में कहा गया है कि धरा ही हमारी धरोहर है, घटित इतिहास हमारी विरासत है। भारत की प्रकृति ही उसकी संस्कृति है और जो यह संस्कृति है, वही भारत का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद है।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को एक सशक्त रूप में जनता के समक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक है। इसके संबंध में जगन्नाथ जोशी का कथन है कि भारत साहित्य, शिल्प, संगीत, भाषा, रीति-रिवाज इन सबमें ही राष्ट्र जीवन का दर्शन होता है। यह सांस्कृतिक तत्व ही राष्ट्र का बोध कराते हैं। हमारा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद संकुचित नहीं है। हम किसी से अलग अथवा दूर रखने वाले नहीं हैं।

भारत में प्राचीन काल से ही एक प्रकार की सांस्कृतिक एकता पाई जाती थी। सम्पूर्ण भारतीय जनसंख्या के आचार-विचार, धर्म, संस्कृति एक सूत्र में बंधे हुए थे तथा वह सभी भारत को एक राष्ट्र के रूप में ही प्रदर्शित करते थे। धर्म से प्रभावित भारतीय संस्कृति ने इस ऐक्य को बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। प्राचीन काल से ही भारतवर्ष धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से एक भू-खण्ड माना जाता था। भारतीय आत्मा की सृजनात्मक अभिव्यक्ति सर्वप्रथम दर्शन, धर्म व संस्कृति के क्षेत्रों में ही हुई। विविधताओं को स्वीकार करने वाले इस देश में एकता के सूत्र में बाँधने का कार्य संस्कृति के द्वारा ही किया गया है।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को लेकर राष्ट्रीय स्तर का मंथन आज भी जारी है। भारत सनातन काल से तत्त्व खोजी, सत्य अभीप्सु राष्ट्र रहा है। तर्क, प्रतितर्क, विचार-विमर्श हमारे राष्ट्र जीवन का सनातन परम्परा है। सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास के समाज का विकास नहीं होता, जब तक की संस्कृति का ज्ञान नई पीढ़ी को नहीं होगा। हमारी परम्परा, विचार शैली, विचार ज्ञान को हस्तांतरित करने में संस्कृति, समाज सुधारकों, संतों, रचनाकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भारतीय वसुधैव कटुम्बकम् की अवधारणा को विश्व ने स्वीकार किया है। इसलिए सांस्कृतिक राष्ट्रभाव ही भारत का मूल विचार है।

भारत में राष्ट्र को कभी भी किसी पर थोपा नहीं गया तथा न ही किसी को उसके लिए प्रताड़ित किया गया। भारतीय राष्ट्रवाद में किसी सम्प्रभु राष्ट्र को छिनने का भाव निहित नहीं है, वरन् यह वैश्विक परिवार का राष्ट्रवाद है। वास्तव में यह राष्ट्रवाद हमारे संस्कारों में निहित है। भारत के संकल्प मंत्र में भारत भूमि को जोड़कर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के प्रति संकल्प को प्रस्तुत किया है।

// जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तके देशान्तरे //

// गते अमुक क्षेत्रे, अमुक नगर आदि आदि //

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के लोक शिक्षण की इतनी सरल एवं प्रभावी प्रक्रिया अन्य कहीं पर प्राप्त नहीं होती है। इस प्रकार भारत नाम से अभिहित विशाल भू-खण्ड की भौगोलिक एकता का साक्षात्कार एकायक नहीं हुआ, वरन् इसका निर्माण हजारों वर्ष में हुआ तथा इसका जुड़ाव सांस्कृतिक था तथा धर्म इसका आधार था। इस प्रकार भारत के विभिन्न क्षेत्रों की जानकारी प्राप्त कर उसके प्रत्येक कोने में तीर्थस्थलों की स्थापना कर भारत को सांस्कृतिक एकता के सूत्र में पिरोया गया। अथर्ववेद के सूक्त “ माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्यां” अर्थात् यह पृथ्वी मेरी माता है तथा मैं इसका पुत्र हूँ, को विश्व का प्रथम राष्ट्रगीत कहा जा सकता है। इस प्रकार सांस्कृतिक राष्ट्रवाद वैश्विक भावना रखता है तथा वैश्विक बहुलता को स्वीकार एवं उसका सम्मान करता है।

भारतीय संस्कृति की यह विशेषता रही है कि विविधता के साथ रहना तथा एक-दूसरे के साथ एकता एवं सामंजस्य का स्वरूप प्रदर्शित करना प्रमुख है। यद्यपि समय-समय पर इस विविधता में एकता को लेकर गम्भीर बहस एवं विवाद की स्थिति उत्पन्न होती रहती है। पंथ निरेपक्षता के विरोध में हिन्दूत्व को खड़ा किया जाता है। वास्तव में यह दिखाया जाता है कि दोनों एक-दूसरे के विरोधी हैं, जो कि निश्चित रूप से सत्य नहीं है। पंथ निरेपक्षता राज व्यवस्था ही वह अवधारणा है, जिसमें सभी धम्म का समान रूप से सम्मान किया जाता है तथा धार्मिक आस्थाओं के आधार पर उनके साथ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता है। दूसरी तरफ हिन्दूत्व मानव जीवन का विराट् दर्शन प्रस्तुत करता है। यह सम्पूर्ण सृष्टि को समग्र रूप से समझने की दृष्टि है, जो कि इहलोक तथा परलोक दोनों के लिए मार्ग को दिखाता है। यह व्यक्ति तथा समाज एवं भौतिक एवं अध्यात्मिक आवश्यकताओं के मध्य एक प्रकार का समन्वय स्थापित करने का कार्य करता है। इस प्रकार यह उदार, उदात्त, मुक्तिगामी स्वरूप में है।

इस प्रकार हम हिन्दूत्व एवं भारतीयता में किसी प्रकार अन्तर नहीं पाते हैं, क्योंकि दोनों एक ही प्रकार के चिंतन को अभिव्यक्त करते हैं। दोनों ही इस बात पर जोर देते हैं कि भारत सभी का है और सभी भारत के हैं। यदि इसको व्यापक सन्दर्भ में देखा जाय तो हम कह सकते हैं कि सभी भारतीयों को समान अधिकार हैं तथा उनकी जिम्मेदारियाँ भी समान हैं। यह हमारी सामूहिक राष्ट्रीय संस्कृति को दर्शाता है। इसमें धार्मिक तथा गैर-धार्मिक तत्व समान रूप से समविष्ट हैं। शताब्दियों से यह दोनों तत्व समान रूप से हमारी राष्ट्रीय पहचान को परिलक्षित करते आए हैं। हिन्दूत्व कोई धार्मिक अथवा राजनीतिक अवधारणा नहीं है, वरन् जीवन का उदात्त एवं उन्नत मार्ग है। यही भारतीयता है।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को रेखांकित करते हुए लालकृष्ण आडवाणी कहते हैं कि— “सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का सहज रूप हिन्दूत्व के रूप में दिखाई देता है। हिन्दूत्व पंथ अथवा मजहब नहीं है तथा न ही किसी धार्मिक राज्य की स्थापना का प्रयास, वरन् इसमें राष्ट्रत्व, सत्त्व समाहित है। यह राष्ट्र को एकजुट करने वाली सुदृढ़ शक्ति है। यह हमारे हजारों वर्षों के हमारे अनुभवों की सामूहिक बुद्धिमत्ता का प्रतीक है।” सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की इस भावना को और अधिक विश्लेषित करते हुए आडवाणी जी, पंडित जवाहर लाल नेहरू के भाषण का एक अंश प्रस्तुत करते हैं, जो कि 1961 ई० में मदुरई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में दिया था। इसमें उन्होंने कहा था कि—

“भारत पिछली अनेक शताब्दियों से तीर्थस्थलों के रूप में बर्फीली हिमालय पर्वतमाला में बद्रीनाथ, केदारनाथ तथा अमरनाथ से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक विस्तृत तीर्थों के दर्शन किये होंगे। इन तीर्थों की क्या विशेषता है, जो लोगों को दक्षिण से उत्तर तथा उत्तर से दक्षिण की तरफ यात्रा करने को प्रेरित करती है। यह एक देश एवं संस्कृति की भावना है और इस भावना ने हम सबको जोड़ रखा है। भारत को एक महान देश समझने की अवधारणा युगों-युगों से चली आ रही है। हमारे यहाँ विभिन्न राजनीतिक स्वरूप के अलग-अलग राज्य रहे हैं, हम विभिन्न प्रकार की भाषाएँ बोलते हैं, फिर भी यह मृदुल बंधन हमें अनेक रूपों में इकट्ठा बाँध कर रखता है।”

इस प्रकार हमारे राष्ट्रवाद का आधार हमारी संस्कृति एवं विरासत है। हमारे लिए ऐसे राष्ट्रवाद का कोई अर्थ नहीं है, जो हमें वेदों, रामायण, महाभारत, गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी आदि गुरु शंकराचार्य, गुरु नानकदेव, महाराणा प्रताप, शिवाजी महाराज, रानी लक्ष्मीबाई, स्वामी दयानन्द सरस्वती, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गाँधी, जयप्रकाश नारायण एवं असंख्य अन्य राष्ट्रीय अधिनायकों से अलग करता हो। यह राष्ट्रवाद ही हमारा धर्म है। इस दृष्टिकोण से

देखा जाए तो हिन्दूत्व एक एकात्मवादी सिद्धान्त है। यह भारत की आत्मा की रक्षा एवं उसे पुनः ऊर्जावान बनाने का सामूहिक उद्यम है। यह एक ऐसा सकारात्मक प्रयास है, जो किसी भी वर्ग को दूसरे की कीमत पर लाभ उठाने की शर्मनाक कोशिशों को रोकता है। हिन्दूत्व अनुशासन एवं आत्मानुशासन है। भारतीय राष्ट्रवाद की संस्कृति अवधारणाओं में निहित अनंत शक्ति को मान्य करके ही राष्ट्र को एकजुट किया जा सकता है। यह बात गौण है कि आप इस अवधारणा को किस प्रकार प्रस्तुत करते हैं, हिन्दूत्व के रूप में अथवा भारतीयता के रूप में। मूल तत्व तो दोनों का एक ही है और वह है इसका सांस्कृतिक रूप।

राजनेता राजनाथ सिंह सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को जोड़ने के मंत्र रूप में देखते हैं। उनका मानना है कि भारत एक राष्ट्र के रूप में सदियों पूर्व विकसित हुआ था। उसकी यह पहचान अंग्रेजों के आने तक रही। अंग्रेजों ने भारत की इस सांस्कृतिक पहचान को धुँधला करने का प्रयास किया तथा यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि भारत की पहचान एक राष्ट्र के रूप में कभी भी नहीं रही तथा अंग्रेजों के आने के बाद यह एक राष्ट्र के रूप में विकसित हो रहा है। वास्तव में राष्ट्र एक विशुद्ध सांस्कृतिक अवधारणा है। राज्य की सीमाओं को लाँघकर उत्तर के हिमालय से लेकर दक्षिण के सागर तट पर राष्ट्र की भावना सदियों पूर्व से विद्यमान रही है। हमारा वैचारिक दृष्टिकोण राष्ट्रवाद से ओत-प्रोत रहा है। इस देश में राजनीतिक एकता से अधिक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक एकता रही है। भारत सम्पूर्ण विश्व में एकमात्र भू-सांस्कृतिक राष्ट्र है। जिन देशों में एकता राजनीतिक कारणों से थी, वे समय के साथ बिखर कर अलग-अलग हो गये।

यदि इसको वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो राष्ट्र का स्वर सांस्कृतिक एकता है। अगर सभी भारतीय भारत की मूल सांस्कृतिक एकता की अनिवर्यता को समझ कर एक पवित्र में आ जाए तो कोई विभेद ही नहीं रह जाएगा। इस स्थिति में सबकी विरासत एक होगी तथा भारतीय एकता के प्रतीक भारतमाता, वंदेमातरम्, भारत के महापुरुष, साधु संत, सूफी फकीर सब के सब साझे होंगे। मेरा और तेरा के स्थान पर हमारा शब्द का प्रयोग होगा। आज नहीं तो कल निश्चित ही भारतीय राजनीति के विभाजक तत्व भारतीय संस्कृति की सर्वव्यापी सत्ता के समक्ष पराभूत हो जाएँगे।

राष्ट्र एक भावनात्मक स्वरूप है, रूप नहीं। रूप बाहर होता है, जबकि स्वरूप आन्तरिक चेतना का नाम है। बाहरी रूप में यह देश भूमि, जनता एवं राजव्यवस्था का योग है, परन्तु आन्तरिक रूप से यह एक दिव्य चेतना है। चेतना का यह साक्षात्कार युगों-युगों से सामूहिक चिंतन का फल है। यही भारत की संस्कृति है। धर्म यहाँ बन्धनकारी नहीं है। सारे पंथ अनुशासन का पाठ पढ़ाते हैं। भारत का धर्म आत्मानुशासन देता है। इसी भारतीय संस्कृति के तत्त्वों को रेखांकित करके प० दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानवाद की अवधारणा को हमारे समक्ष रखा। भारत की धमनियों में एक अदृश्य चेतना बहती है, जिसके कारण करोड़ों व्यक्ति एक ही स्थान पर एकत्र हो जाते हैं, जैसे :- महाकुम्भ का प्रयाग नगरी का संगम। यह भारत के राष्ट्र होने की पहचान और उसकी चेतना है। इसका आशय मात्र यह है कि भारत एकमात्र ऐसा राष्ट्र है, जो अपनी अमूल्य सनातन सांस्कृतिक परम्पराओं के कारण ही एकसूत्र में बँधा हुआ है। इस चेतना को कोई कैसे भुला सकता है, अपनी जड़ों से कटकर कोई समाज किस प्रकार जीवित रह सकता है। भारत की संस्कृति जिन मूल्यों एवं आदर्शों की वकालत करता है, वे संसार के ऊँचे मानदण्ड हैं।

भारत एक राष्ट्र है तथा उसकी अपनी एक संस्कृति है। यदि भारत के लोग इस सत्य को स्वीकार नहीं करते तो राष्ट्र के प्रभुसत्ता एवं अखण्डता खतरों में पड़ सकती है। भारत की सांस्कृतिक एकता का अर्थ यह नहीं है कि

भारत में अनेक संस्कृतियाँ हैं, वरन् इसका अर्थ है कि इस राष्ट्र की अपनी एक संस्कृति है और वह अनेकता को प्रश्रय देती है। भारत में अगर आज सर्वधर्म सम्भाव है तो वह कम से कम पाँच हजार वर्ष की हिन्दू सभ्यता के मूल्यों एवं परम्पराओं के कारण है, जिसमें मजहब के नाम पर नागरिकों के साथ किसी प्रकार का भेदभाव करने की परम्परा नहीं रही है। ईसाई, यहूदी, इस्लाम जब भारत की धरती पर आये तो हिन्दू सभ्यता के द्वारा उनका स्वागत किया गया। राजाओं ने मस्जिद एवं गिरजाघर बनाने के लिए भूमि प्रदान किया। ऐसा इसलिए सम्भव हो सका, क्योंकि हिन्दू सभ्यता में दूसरों के लिए भी वैसी ही गुंजाईश और जगह है, जैसा कि यहाँ पैदा हुये पंथों एवं सम्प्रदायों के लिए है। भारत सनातन से एक हिन्दू राष्ट्र है और हिन्दू राष्ट्र में किसी एक मजहब अथवा पंथ की अवधारणा कभी नहीं की गई है। विचारों की विविधता हिन्दूत्व आधार है। भारत में कभी भी पंथ पर आधारित राज्य की कल्पना नहीं की गई। जब हम भारत में पंथ पर आधारित राज्य की कल्पना का त्याग करते हैं तो एकमात्र कारण यह है कि भारत एक जीवांत व परम्परागत रूप से हिन्दू संस्कृति पर आधारित राष्ट्र है।

इस प्रकार विभिन्न विश्लेषणों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि भारतीय राष्ट्र तथा राष्ट्रवाद की अवधारणा मूलतः सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक, सामूहिक तथा विवेकपूर्ण, सनातन धर्म पर आधारित है। इसका मूल उसकी संस्कृति है, जो कि शेष विश्व में प्रचलित राष्ट्र की अवधारणा में सर्वथा अनुपस्थित है। इस प्रकार के सांस्कृतिक राष्ट्रभाव को राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के द्वारा प्रश्रय दिया जाता है। भारत के प्राचीनतम साहित्य में अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है। इसकी प्रमुखता सांस्कृतिक तथा सामाजिक तो है ही साथ ही राजनीतिक एवं आर्थिक भी है। प्रकृति में यह विकासवादी है न कि किसी विशेष परिस्थिति की ऊपज है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा राष्ट्रीय हितों को मात्र आर्थिक सरोकारों के समतुल्य करके नहीं देखती। इसके विपरित मानवीय सरोकारों एवं हित इसके लिए अधिक मानवीय सरोकारों एवं हित इसके लिए अधिक मायने रखती है। यह मात्र राजनैतिक व भू-स्थैतिक एकता एवं संप्रभुता को आधार नहीं मानती वरन् सांस्कृतिक एकता को उसका प्रमुख आधार मानती है। यह कभी भी सांस्कृतिक भिन्नता को राष्ट्र के लिए खतरा नहीं मानती है। यह भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक मूल्यों के बीच अस्तित्व की भावना के आधार पर यह राष्ट्र मूल्य को स्वीकार करता है। इसके सांस्कृतिक मूल्य ही इसे अखण्ड राष्ट्र के रूप में पूर्व से लेकर पश्चिम तक तथा उत्तर से लेकर दक्षिण तक एक सूत्र में पिरोने का कार्य करते हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. प्रो० एम० सिंह एवं रामाकान्त सिंह का शोध प्रकाशन
2. डॉ० सत्येन्द्र त्रिपाठी, डॉ० कृष्णदत्त द्विवेदी (सं०) भारतीय राष्ट्रवाद एवं विकास, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 1990, पृ० सं० 56
3. प्रभात झा (सं०), सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ० सं० 81
4. प्रभात झा (सं०), सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ० सं० 85
5. प० ब्रजबल्लभ द्विवेदी, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, शैवभारती शोध प्रतिष्ठानम्, वाराणसी, 2004, पृ० सं० 46
6. दैनिक जागरण, राजनाथ सिंह का लेख, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, हिन्दी दैनिक पत्रिका, लखनऊ संस्करण, नवम्बर, 2016, पृ० सं० 7

7. प्रभात झा (सं०), सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० सं० 123
8. प्रो० श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी, डॉ० सच्चिदानन्द मिश्र, भारत में राष्ट्रवाद के विम्ब, अंकित प्रकाशन 2018